Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
July to September 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLVII, ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

ऋग्वैदिककाल से सूत्रकाल तक का सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. अमित कुमार ताम्रकार*

* सहायक प्राध्यापक (इतिहास) स्वामी विवेकानंद शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय नरसिंहपुर (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – ऋग्वेद संहिता आर्यों की सबसे पहली साहित्यिक रचना है। जो उनके जीवन के आरंभिक चरण पर प्रकाश डालती है जिसमें उनके सुव्यवस्थित सामाजिक संगठन का आभास मिलता है।आर्य अपनी खानाबदोशी छोड़कर स्थायी रूप से मकान में रहने लगे थे। इन घरों में आर्यों ने एक सुखद पारिवारिक जीवन का विकास किया। उसका रूप आज भी हम अपने चारों ओर पाते हैं। आर्यों के सामाजिक जीवन की इकाई संयुक्त परिवार था। पितृसत्तात्मक परिवार आर्यों के कबीलाई समाज की बुनियादी इकाई था। समाज में महिलाओं की अच्छी प्रतिष्ठा थी। उत्तार वैदिक काल में आर्यों का समाज धीरे–धीरे जटिल होता चला गया। यह जटिलता प्रत्येक क्षेत्र में परिलक्षित हुई। धार्मिक कृत्यों की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई महत्ता तथा जीवन के बदलते हुए दृष्टिकोण इस परिवर्तन के मूल में थे। सूत्रकाल तक आते–आते वर्णों का पारस्परिक विभेद अत्यधिक बढ़ गया। समाज में अस्पृश्यता का उदय हुआ। सूत्रकाल में स्त्रियों की दशा वैदिक काल की अपेक्षा हीन थी तथापि परिवार में उन्हें सम्मानित स्थान प्राप्त था।

शब्द कुंजी – ऋग्वैदिक काल, उत्तरवैदिक काल, सूत्रकाल, समाज,संस्कृति, विकास।

प्रस्तावना – सिंधु घाटी सभ्यता के पतन के पश्चात् भारत में वैदिक काल का पदार्पण लगभग 1500 ई. पू. में हुआ। ऋग्वैदिक काल का विस्तार 1500 से 1000 ई. पू. माना जाता है। उसके उपरांत अन्य वेदों सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद तथा ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक एवं उपनिषद् पर आधारित काल अर्थात उत्तर वैदिक काल का विस्तार 1000 से 600 ई. पू. मान्य है। वैदिक सभ्यता के निर्माता आर्य थे, जिसका अर्थ उत्ताम या श्रेष्ठ होता था। उत्तर वैदिक काल के अंत तक वैदिक साहित्य अत्यंत व्यापक एवं जटिल हो चुका था। अत: एक व्यक्ति के लिए संपूर्ण साहित्य को कण्ठस्थ कर सकना असंभव था। फलस्वरूप वैदिक साहित्य को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए उसे संक्षिप्त करने की आवश्यकता हुई। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए सूत्र–साहित्य का प्रणयन हुआ। इसमें अधिक सामग्री कम शब्दों में पिरो दी गई जिससे वैदिक साहित्य को कण्ठस्थ कर सकना सरल हो गया।

सामान्यत: सातवीं या छठीं शताब्दी ई. पू. से लेकर तीसरी शताब्दी ई. पू. तक का समय सूत्र काल कहा जा सकता है। सूत्रों में गौतम धर्मसूत्र सबसे प्राचीन माना गया है। श्रौत सूत्रों के विषय में नितांत कर्मकाण्डीय होने के कारण ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं है। गृह्य और धर्म सूत्रों का ग्रहस्थ और सामाजिक जीवन से संबंध होने के कारण अधिक ऐतिहासिक महत्व है। इन दोनों में अनेक बातें समान हैं। अंतर केवल यही है कि जहाँ गृह्यसूत्र ग्रहस्थ जीवन के नियमों का विस्तार से वर्णन करते हैं वहीं धर्मसूत्र में ये नियम संक्षेप में दिए गए हैं तथा धर्म पर विशेष बल दिया गया है।

गृह्य सूत्रों का विषय धर्म सूत्रों की अपेक्षा सीमित है क्योंकि वे केवल व्यक्ति के ग्रहस्थ जीवन एवं कर्मकाण्डों का वर्णन करते हैं। परंतु व्यक्ति के परिवार, कौटुम्बिक जीवन एवं परिवार से संबंधित है सूक्ष्मातिसूक्ष्म बातों का जितना विस्तृत वर्णन इनमें मिलता है वह विश्व के किसी भी साहित्य में प्राप्त होना दुर्लभ है। मनुष्य के ग्रहस्थ जीवन में जन्म से लेकर मृत्यु तक के संपूर्ण कर्तव्यों तथा कर्मों का निर्देश गृह्य सूत्रों में हुआ है।

ऋग्वैदिक साहित्यों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि यह एक सरल समाज था। इस काल के समाज का स्वरूप जनजातीय प्रकार का था। सामाजिक जीवन में जनजातीय विचारों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। परिवार में सम्मिलित रूप से तीन–चार पीढ़ी के लोग साथ–साथ जीवन निर्वाह करते थे। इनके सामाजिक जीवन में खून का रिश्ता महत्वपूर्ण था। जो कि जनजातीय विचारों को अभिव्यक्त करता है।उत्तर वैदिक काल का समाज भी मुख्यत: जनजातीय प्रकार का था। सामान्यतरू उत्तर वैदिक काल के समाज को ऋग्वैदिक काल के समाज के निरंतरता में ही देखा जा सकता है। परंतु उत्तरवैदिक काल के अंतिम दिनों विशेषकर 800–700 ई. पू. में सामान्य जनजातीय प्रभाव विघटित होना प्रारंभ हो गया था।सूत्रकाल का समाज वैदिककाल के समाज के विकसित अवस्था को परिलक्षित करता है। समाज में जनजातीय प्रभाव नहीं था अर्थात सूत्रकाल में वैदिक समाज के संदर्भ में परिवर्तन के तत्व दृष्टिगोचर होते हैं।

ऋग्वैदिक काल में समाज का स्वरूप अस्थाई प्रकार का था। ऋग्वैदिक काल के लोग पशुचारणिक एवं घूमंतू थे। फलतरू इस काल का समाज भी स्थायित्व को प्राप्त नहीं कर पाया था। उनके घुमंतू प्रवृत्ति के कारण ही इस काल के कबीलों की पहचान वंश से होती थी। जैसे– भरत वंश, पुरु वंश इत्यादि।उत्तर वैदिक काल का समाज स्थायित्व को प्राप्त कर लिया था। इस रूप में पूर्व काल की तुलना में परिवर्तन का तत्व स्पष्ट होता है। इस काल के समाज को क्षेत्रीय समाज की संज्ञा दी जाती है। इसलिए इस काल में कबीलों की पहचान क्षेत्र के आधार पर होना प्रारंभ हो गई। जैसे– कुरु, पांचाल इत्यादि।सूत्रकाल का समाज पूर्णत: स्थाई समाज था इस काल का समाज

राजतांत्रिक समाज को परिलक्षित करता है।

ऋग्वैदिक काल में समाज में सामुदायिक स्वामित्व एवं सामुदायिक दृष्टिकोण की अवधारणा प्रबल थी। फलतरू इस काल में व्यक्तिवादी मूल्यों का विकास नहीं हो पाया था।उत्तर वैदिक काल के समाज में भी सामुदायिक स्वामित्व की अवधारणा निरंतर रही परंतु इस काल के अंतिम दिनों में इस अवधारणा में विघटन प्रारंभ हो गया।सूत्रकाल के समाज में सामुदायिक स्वामित्व की अवधारणा का विघटन हो गया था और मुख्यत: व्यक्तिगत संपत्ति की अवधारणा का विकास हुआ। फलतरू इस काल में व्यक्तिवादी मूल्यों का विकास हुआ। समाज में गणिकाओं का उद्भव इस बात को प्रमाणित करता है।

ऋग्वैदिक काल और उत्तरवैदिक काल दोनों ग्रामीण समाज को अभिव्यक्त करते हैं। हालांकि उत्तरवैदिक काल के अंतिम दिनों में शहरीकरण की कुछ प्रवृत्ति दृष्टिगोचर हुई।सूत्रकाल में ग्रामीण समाज के साथ-साथ शहरी समाज का भी उद्भव हुआ। 600 ई. पू. काल एवं उसके बाद के काल में भारत में द्वितीय नगरीकरण का दौर माना जाता है। इस शहरीकरण के उपरांत ही समाज में कुछ नए वर्गों का उद्भव हुआ। जैसे- धोबी, नाई इत्यादि। साथ ही कुछ नए व्यवसायों का उद्भव हुआ जैसे- भोजनालय।

ऋग्वैदिक काल एवं उत्तर वैदिक काल दोनों के समाज का स्वरूप सामान्यत: समता मूलक था। समाज में भेदभाव की प्रवृत्ति कम थी। हालांकि इस काल के समाज में लैंगिक असमानता दृष्टिगोचर होती है। इन दोनों काल के समाज का विभाजन श्कार्यकारीश था। वस्तुतरू यह विभाजन वर्ण भेद को न बताकर कार्य विभाजन को बतलाता है।सूत्रकालीन समाज स्पष्टत: विभेदमूलक समाज था। आर्थिक रूप से समाज में 600 ई. पू. काल और उसके बाद कुछ अभिजात्य वर्गों की उपस्थिति देखने को मिलती है। इस काल के समाज में भिक्षावृत्ति की प्रवृत्ति का भी विकास दृष्टिगोचर होता है। यह भी इस बात की ओर संकेत करता है कि समाज में विषमता के तत्व विद्यमान थे।

ऋग्वैदिक काल के अंतिम दिनों में वर्ण व्यवस्था का उद्भव हुआ। इसका सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद के 10 वें मंडल में हुआ है। परंतु वर्ण व्यवस्था का स्वरूप कठोर नहीं था। वर्ण व्यवस्था का जो स्वरूप उस समय समाज में विद्यमान था वह उसके क्षैतिज स्वरूप को स्पष्ट करता है। ऋग्वेद के नौवें मण्डल में एक उल्लेख आया है जिससे यह स्पष्ट होता है कि एक ही परिवार के लोग भिन्न-भिन्न वर्णों से संबद्ध थे। फलतरू यह स्पष्ट है कि वर्ण व्यवस्था का आधार कर्म था।उत्तर वैदिक काल में ऋग्वैदिक वर्ण व्यवस्था की ही निरंतरता दृष्टिगोचर होती है। इस काल में भी वर्ण व्यवस्था का कठोर स्वरूप स्थापित नहीं हुआ था। यद्यपि इस काल के अंतिम दिनों में ब्राह्मण एवं क्षत्रियों के द्वारा कुछ सामाजिक विशेषाधिकार प्राप्त करने की प्रवृत्ति का विकास हुआ।सूत्रकाल के समाज में वर्ण व्यवस्था कठोर रूप में स्थापित हुई। वर्ण का आधार परिवर्तित होकर श्कर्मश के स्थान पर श्जन्मश हो गया। वर्ण व्यवस्था के ऊर्ध्वाधर स्वरूप की स्थापना हुई।धर्म सूत्रों में वर्ण धर्म के पालन पर बल दिया गया है। वह भी इस बात की पुष्टि करता है।

ऋग्वैदिक कालीन समाज में महिलाओं की स्थिति उन्नत थी। महिलाओं को राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षणिक एवं धार्मिक अधिकार के साथ-साथ व्यक्तिगत स्वतंत्रता भी प्राप्त थी। इस काल में महिलायें राजनीतिक संगठन जैसे- सभा, समिति, विदथ में भाग लेती थी। इस काल में महिलाओं का भी उपनयन संस्कार होता था और महिलायें शिक्षा ग्रहण करती थी। ऋग्वेद में विदुषी महिलाओं की भी चर्चा हुई है। जैसे- आपला, लोपामुद्रा, विश्ववारा, घोषा इत्यादि। इन महिलाओं ने ऋग्वेद के आठवें मंडल में विभिन्न सूक्तो की रचना की थी।उत्तर वैदिक काल में यद्यपि महिलाओं की स्थिति अच्छी बनी रही तथापि पूर्व काल की तुलना में कुछ पतन के तत्व जरूर दृष्टिगोचर होते हैं। महिलाओं को राजनीतिक अधिकार से वंचित किया गया। अब वे सभा, समिति में भाग नहीं लेती थी। उल्लेखनीय है कि सभा, समिति का स्वरूप केवल राजनीतिक नहीं था बल्कि उसका स्वरूप कुछ हद तक सामाजिक, आर्थिक एवं सैनिक था। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सार्वजनिक जीवन के संदर्भ में महिलाओं की स्थिति में कुछ हद तक पतन हुआ। इस काल में भी महिलाओं के संदर्भ में किसी कुप्रथा का विकास नहीं हुआ।सूत्र साहित्य विशेषकर धर्मसूत्रों से यह स्पष्ट होता है कि सूत्रकाल में महिलाओं की स्थिति में पतन हुआ। इस काल से बाल विवाह को बढ़ावा मिला। विधवा पुनर्विवाह अब संभव नहीं था। महिलाओं पर पुरुषों के अधिकार को स्थापित करने का प्रयास इस काल से प्रारंभ हो गया था।

ऋग्वैदिक काल में विवाह रूपी संगठन का विकास हो चुका था और विवाह सरल प्रकार से संचालित होता था। विवाह के संदर्भ में व्यक्ति को स्वतंत्रता भी प्राप्त थी।उत्तर वैदिक काल में सगोत्र एवं सपिण्ड प्रथा का विकास हुआ। इस काल में सगोत्र एवं सपिण्ड विवाह को निषिद्ध किया गया।सूत्रकाल में विवाह के आठ प्रकार का उद्भव हुआ। इसमें से चार प्रकार के विवाह को स्वीकृत घोषित किया गया जबकि अन्य चार प्रकार के विवाह को अस्वीकृत किया गया।

ऋग्वैदिक काल में मौखिक शैक्षणिक परंपरा दृष्टिगोचर होती है। शिक्षा का स्थानांतरण पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप से होता था। उत्तर वैदिक काल में भी मौखिक शिक्षा की परंपरा निरंतर रही।सूत्रकाल में शिक्षा को लिखित स्वरूप प्रदान करने का प्रयास किया गया। इस प्रकार इस काल में शिक्षा के क्षेत्र में स्थायित्व का विकास दृष्टिगोचर होता है।

ऋग्वैदिक काल के लोगों का धार्मिक जीवन सरल प्रकार का था। वे प्रकृति के पुजारी थे तथा इनके पूजा का मुख्य माध्यम स्तुति गान था तथा पूजा का उद्देश्य भौतिक सुखों की प्राप्ति था।उत्तर वैदिक काल के धार्मिक जीवन में जटिलता का विकास हुआ। इस काल में कर्मकाण्ड की महत्ता बढ़ी। फलस्वरूप धार्मिक क्षेत्र में विचौलिया वर्ग का उद्भव हुआ। इस काल में पशुबलि को बढ़ावा मिला। धार्मिक क्षेत्र में ब्राह्मणों की भूमिका बढ़ी।सूत्रकाल वस्तुत: एक धार्मिक आंदोलन का काल है। इस काल में ब्राह्मण धर्म की जटिलता के विरुद्ध कुछ नये वाममार्गी धर्मो का विकास हुआ। जैसे- बौद्ध धर्म, जैन धर्म, आजीवक संप्रदाय इत्यादि।

ऋग्वैदिक काल के लोगों का आर्थिक जीवन अल्पविकसित था। वे पशुपालन के द्वारा एवं सीमित कृषि के माध्यम से अपनी सामाजिक-आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे।उत्तर वैदिक काल के आर्थिक जीवन में पूर्व काल की तुलना में कुछ विकास दृष्टिगोचर होता है। इस काल के आर्थिक जीवन में कृषि की महत्ता बढ़ी तथा व्यापार एवं शिल्प को प्रोत्साहन मिला।सूत्रकाल का आर्थिक जीवन उन्नत अवस्था को प्रदर्शित करता है। इस काल के आर्थिक जीवन में मौद्रिकरण को बढ़ावा मिला, व्यापार को बढ़ावा मिला, शहरीकरण को बढ़ावा मिला, कृषि अधिशेष को बढ़ावा मिला। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि इस काल का आर्थिक जीवन भौतिकवादी समाज के आधार को निर्मित किया।

ऋग्वैदिक काल में लोगों के दार्शनिक दृष्टिकोण का प्रमाण नहीं मिलता

है। इसी प्रकार सामान्यत: उत्तर वैदिक काल में भी दर्शन का विकास दृष्टिगोचर नहीं होता है। परंतु इसके अंतिम दिनों में जब उपनिषद् की रचना हुई तो यहां से दर्शन का विकास प्रारंभ हुआ।सूत्रकाल में उपनिषद् के ही आधार पर षड्दर्शन का विकास प्रारंभ हुआ जिसका अंतिम रूप से संकलन गुप्तकाल में किया गया।

ऋग्वैदिक कालीन लोगों के सामाजिक जीवन में भाषा एवं साहित्य को भी देखा जा सकता है। लोग वैदिक संस्कृति से अवगत थे और ऋग्वेद की रचना हो चुकी थी। परंतु इसे लिखित स्वरूप प्रदान नहीं किया गया था।उत्तर वैदिक काल में भी वैदिक संस्कृत के आधार पर ही अन्य तीनों वेदों, ब्राह्मण साहित्य, आरण्यक एवं उपनिषद् साहित्य की रचना हुई। इन साहित्यों को भी 800 ई. पू. तक लिखित रूप प्रदान नहीं किया गया था।सूत्रकाल में भाषा एवं साहित्य के क्षेत्र में एक विकास दृष्टिगोचर होता है। इस काल में पाणिनी के द्वारा व्याकरण की पुस्तक अष्टाध्यायी की रचना की गई। जिससे वैदिक संस्कृत का और विकास हुआ। सूत्रकाल में ही सूत्र साहित्य की रचना की गई और इसे लिखित स्वरूप भी प्रदान किया गया। इससे साहित्य के क्षेत्र में बढ़ावा मिला।

वर्तमान समय में लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में संविधान ने सभी को एक समान अधिकार प्रदान किए हैं।महिलाओं को भी पुरुषों के समान अधिकार प्रदान किए गए हैं।संविधान द्वारा समस्त सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक भेदभाव, कुरीतियों, रुढ़ियों, अस्पृश्यता, उंच-नीच एवं छुआछूत को समाप्त कर दिया गया हैऔर इनको समाज से पूर्ण रूप से समाप्त करने के लिए कठोर कानूनी कार्यवाही एवं सजा का प्रावधान भी किया गया है। बावजूद इसके वर्तमान शिक्षा, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, सूचना एवं संचार के युग में भी मनुष्य जातिवाद, सामाजिक-धार्मिक कर्मकाण्ड, कुरीतियों, रुढ़ियों, दकियानूसी परंपराओं, छुआछूत, अस्पृश्यता, साम्प्रदायिकता इत्यादि से मानसिक रुप से ग्रसित है। महिलाओं के साथ भेदभाव, हिंसा एवं अपराधों में निरंतर वृद्धि हो रही है। वैश्वीकरण, उदारीकरण एवं निजीकरण के फलस्वरूप भारतीय समाज एवं संस्कृति का पश्चिमीकरण हुआ जिसने अत्यधिक भौतिकवादी जीवन शैली को बढ़ावा दिया परिणामस्वरूप भारत की परिवारिक एवं सामुदायिक जीवन शैली नकारात्मक रूप से प्रभावित हुई है। जिसने समाज में अनेक नवीन कृत्रिम समस्याओं को जन्म दिया है। वैदिक कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों को अपनाकर इन समस्याओं से मुक्ति पाई जा सकती है। आधुनिक भारत में धार्मिक-सामाजिक सुधार आंदोलन के प्रमुख नेता स्वामी दयानंद सरस्वती ने भी नारा दिया था श्वेदों की ओर लौटोश।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. महाजन, विद्याधर, प्राचीन भारत का इतिहास, एस.चंद एण्ड कंपनी लि., नई दिल्ली, वर्ष 2000
2. निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली, वर्ष 2001
3. झा, द्विजेंद्रनारायण एवं श्रीमाली, कृष्णमोहन, प्राचीन भारत का इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, वर्ष 2002
4. श्रीवास्तव, डॉ. कृष्ण चंद्र, प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, वर्ष 2005
5. दहीभाते, डॉ. ए. सी. एवं पारीक, डॉ. पूनम, इतिहास प्रथम वर्ष, राम प्रसाद एण्ड संस, भोपाल
6. मजूमदार, डॉ. रमेश चंद्र, प्राचीन भारत, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी वर्ष 1983
7. लुणिया, बी.एन., प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, कमल प्रकाशन, इंदौर वर्ष 2001

****